सीमा तक ले चलने

दर्शन की अवधारणा
(Concept of Philosophy)

सामान्यतः यह माना जाता रहा है कि दर्शन एक विश्व-दृष्टि देता है। भारत में दर्शन की व्यवहारिक उपयोगिता बतायी गयी है——इसे एक प्रकार से धार्मिक एवं तात्विक लक्ष्य की प्राप्ति के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसका लक्ष्य है मानव को दुख के बन्धन से मुक्त करना। इस लक्ष्य की प्राप्ति का उपकरण यथार्थ ज्ञान है, और ज्ञान वही यथार्थ कहा गया है जिसके द्वारा सत्-असत् का भेद स्पष्ट हो। इसका अर्थ है कि भारतीय परम्परा में भी दर्शन एक विश्व दृष्टि देता है। दर्शन का अर्थ ही 'दृष्टि' बताया गया है। दर्शन का कार्य जगत के स्वरूप को समझना है जिसमें अन्ततः वह वास्तविक एवं अवास्तविक के अन्तर को स्पष्ट रूप में जान ले।

किन्तु कृष्ण चन्द्र दर्शन के स्वरूप-सम्बन्धी इस विचार से सहमत नहीं हैं। इस विषय पर उनके विचार कांट के विचारों से कुछ मिलते हैं, तथा एक अर्थ में तार्किक भाववादी विचार के समान है। इन विचारों के समान भट्टाचार्य का भी कहना है कि दर्शन का कार्य विश्व-दृष्टि की संरचना नहीं है। उनका कहना है कि दर्शन के निर्णय तथ्यात्मक होते ही नहीं। उनका सम्बन्ध 'तथ्यों' से है ही नहीं, वे आनुभविक निर्णय नहीं है, अतः उनका दावा भी नहीं रहता कि वे तथ्य-निर्देश कर रहे हैं। तब प्रश्न उठता है कि दर्शन के निर्णय किस प्रकार के हैं——उनसे क्या कार्य सम्पादित होता है? इस प्रकार के उत्तर में कृष्ण चन्द्र अपने 'सैद्धान्तिक चेतना' (Theoretic Consciousness) का विचार प्रतिपादित करते हैं।

Scanned by TapScanner

सैद्धान्तिक चेतना के चार वर्ग हैं। दर्शनशास्त्र उन सैद्धान्तिक चेतनाओं का एक रूप है। सैद्धान्तिक चेतना के निम्नलिखित चार प्रकार हैं।

१. अनुभववादी चिन्तन।
२. तत्त्व चिन्तन।
३. आध्यात्मिक चिन्तन।
४. अनुभवातीत चिन्तन।

दर्शनशास्त्र अनुभववादी विचार का अध्ययन नहीं करता है। यह शेष तीन प्रकार के ज्ञान पर आधारित है। अनुभववादी चिन्तन हमें वस्तुओं के ज्ञातव्य तथा प्रयोज्य गुणों का ज्ञान प्रदान करता है। विज्ञान तथा दर्शन शास्त्र में उनके अध्ययन के क्षेत्रों में भेद है। विज्ञान का सम्बन्ध तथ्यों से है। यह वस्तुओं के गुणों का तथ्यवादी विचार है। हम इसमें वस्तुओं का तथ्यों के रूप में अध्ययन पाते हैं। सम्बन्ध, निर्णय और तर्कवाक्य वैज्ञानिक अध्ययन के अन्तर्गत् आते हैं। विज्ञान का अभिप्राय निम्नलिखित समस्याओं से हैं :—

(अ) विज्ञान के विभिन्न निष्कर्षों को मिलाकर एक विश्व दृष्टि की संरचना की समस्या।

(ब) तथाकथित विकास के दर्शन से सम्बन्धित समस्या।

(स) विज्ञान के आधार तत्त्व या प्रत्यय के ढाँचा निरूपण से सम्बन्धित समस्या।"[1]

---

१. स्टडिज इन फिलासाफी, पृष्ठ— १५.

Scanned by TapScanner

अध्ययन के ये सभी क्षेत्र विज्ञान के विषय के अन्तर्गत आते हैं। ये दर्शनशास्त्र के विषय नहीं है। दर्शनशास्त्र के द्वारा उनके अध्ययन का कोई भी प्रयत्न उसे अपने विषय से बाहर जाना है। इस तरह भट्टाचार्य वैज्ञानिक तथा दर्शन शास्त्रीय अध्ययन के बीच सीमाएँ निर्धारित करते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धान् के तत्त्वों एवं विकास सम्बन्धी ज्ञान, विज्ञान के अध्ययन के अन्तर्गत आते हैं। अनुभवमूलक समस्याओं से दर्शनशास्त्र का कोई सम्बन्ध नहीं है।

विज्ञान में तथ्यों का अध्ययन ज्ञाता के उल्लेख के बिना किया जाता है, लेकिन दर्शनशास्त्र में प्रत्येक वस्तु का अध्ययन ज्ञाता के संदर्भ में होता है। कान्ट ने यह परिकल्पना करके गलती की है कि वस्तु का तत्त्व चिन्त्य है, किन्तु ज्ञातव्य नहीं हैं। कोई अज्ञेय वस्तु चिन्तन का विषय नहीं हो सकता है। कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य का विचार है कि परमार्थ तत्त्व ज्ञेय है किन्तु चिन्त्य नहीं है, अर्थात् आत्मभू तत्त्व शब्दशः विचारणीय नहीं है, किन्तु वे प्रतिकात्मक रूप से चिन्त्य है। परमार्थ तत्त्व को हम साधारण अर्थ में नहीं जान सकते। उसकी आध्यात्मिक अनुभूति होती है। आध्यात्मिक अनुभूति में ब्रह्म, आत्मन् एवं तत्त्वों का ज्ञान मिलता है, जिनका चिन्तन नहीं हो सकता।

तीन प्रकार के सैद्धान्तिक चिन्तन पर आधारित दर्शनशास्त्र के तीन विभाग हैं :—(१) वस्तु संबंधी दर्शन, (२) आत्मन् संबंधी दर्शन और (३) सत्य संबंधी दर्शन।

दर्शनशास्त्र का प्रथम विभाग वस्तुओं के तत्त्व का अध्ययन करता है, दूसरा आत्मा का और तीसरा परम सत्ता के स्वरूप का अध्ययन करता है। वस्तु के दर्शन में हम तत्त्वभीमांसा, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान और मूल्यमीमांसा का अध्ययन करते हैं। तत्त्वमीमांसा, वस्तुओं के तत्त्व के स्वरूप का अध्ययन है, तर्कशास्त्र उनके आकार का अध्ययन करता है। तत्त्वमीमांसा पदार्थों के तत्त्व का अध्ययन करता है। यह तत्त्वों पर आधारित अनेक सिद्धातों का विकास करता है। तर्कशास्त्र तत्त्व के आकारों का अध्ययन करता है। आकार, तत्त्व पर निर्भर करते हैं और तर्कशास्त्र तत्त्वमीमांसा पर आधारित है। आकारों का अध्ययन तत्त्वों पर निर्भर है, तर्कशास्त्र तत्त्वमीमांसीय सिद्धान्तों पर निर्भर है। निष्कर्ष के रूप में, तर्कशास्त्र में उतने ही सिद्धान्त पाये जाते हैं, जितने तत्त्वमीमांसीय सिद्धान्त हैं।

Scanned by TapScanner

१. वस्तु सम्बन्धी दर्शन :

तत्त्वमीमांसा पदार्थ का दर्शन है। यह वस्तुओं के तत्त्व का अध्ययन है। तर्कशास्त्र तत्त्वों के आकारों का अध्ययन करता है। तत्त्वमीमांसा का अध्ययन चिन्तन और रहस्यानुभूति पर आधारित है। तत्त्व का ज्ञान चिन्तन और सौन्दर्यात्मक अनुभवों में भिन्न-भिन्न होते हैं, जिससे सम्बन्धित भिन्न-भिन्न सिद्धान्तें हैं। तर्कशास्त्र में भी कई वैकल्पिक सिद्धान्त पाए जाते हैं। तर्कशास्त्र का संबंध वस्तुओं के आकारों से हैं, और तत्त्वमीमांसा का संबंध वस्तुओं के तत्त्वों से है। अतएव, 'तर्कशास्त्र', 'तत्त्वमीमांसा' पर निर्भर है, और तत्त्वमीमांसा रहस्यानुभूति पर आधारित है। डा० रासबिहारी दास के अनुसार, "तर्कशास्त्र और तत्त्वमीमांसा वस्तु के दर्शनों को निर्मित करते हैं। दर्शनशास्त्र तत्त्वों के प्रत्ययों को अधिकाधिक विस्तारित करता है। वस्तु को वस्तु के रूप में सिर्फ़ ज्ञाता के त्रिरोध में ही समझा जा सकता है। अमुक वस्तु क्या है, यह हम तब तक नहीं समझ सकते हैं, जब तक हम चेतना के आत्मगत् या आध्यात्मिक स्तर तक नहीं पहुँचते हैं।"[1]

तर्कशास्त्र के विवाद वस्तुतः तत्त्वमीमांसीय हैं क्योंकि तर्कशास्त्र आकार का अध्ययन करता है, और तत्त्वमीमांसा तत्त्व का अध्ययन करता है। भट्टाचार्य कहते हैं, "तर्कशास्त्रीय सिद्धान्त की मौलिक विभिन्नताएँ, जैसा कि ऊपर कहा गया है, निर्विवाद रूप से तत्त्वमीमांसीय हैं। तत्त्वमीमांसा की मौलिक विभिन्नताएँ निश्चित रूप से आध्यात्मिक हैं, तथा चिरन्तन आत्मा के सिद्धान्त में मौलिक भिन्नताएँ निर्विवाद रूप से धार्मिक हैं।"[2] तार्किक भिन्नताएँ तर्कमीमांसीय विभेदों के कारण हैं, तथा तत्त्वमीमांसीय भिन्नताएँ धार्मिक अनुभूतियों में भिन्नता के कारण हैं। धार्मिक अनुभूति के बिना कोई तत्त्वमीमांसा नहीं हो सकती है, तथा तत्त्वमीमांसा के बिना कोई तर्कशास्त्र का निर्माण नहीं हो सकता है। अतएव, यदि कोई किसी विशिष्ट तार्किक प्रणाली में विश्वास करता है तो उसे तत्सम्बन्धी तत्त्वमीमांसा और धर्म को भी अपनाना पड़ता है।

---

१. कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य मिमोरिअल वाल्यूम, इंडियन इन्स्टीच्यूट आफ़

वस्तु का अनुभव उसके आकार के पहले होता है। तर्कशास्त्र, तत्त्वमीमांसा की अग्रिम कल्पना करता है। चूँकि तत्त्वमीमांसा वस्तुओं के वैकल्पिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत करता है, तर्कशास्त्र की वैकल्पिक प्रणालियाँ भी हैं। इस तरह तर्कशास्त्र एवं तत्त्वमीमांसा वस्तु दर्शन के दो विभाग हैं।

तत्त्वमीमांसा वस्तुओं के तत्त्व का अध्ययन है, इसका दृष्टिकोण वस्तुपरक है। इसलिए आत्मन् का कोई तत्त्वमीमांसा नहीं होता है। वस्तु, आध्यात्मिक एवं अनुभवातीत चिन्तन की सत्ताएँ स्वतः सिद्ध हैं। जबकि विज्ञान में तथ्यों की व्याख्या की जाती है, तत्त्व का विज्ञान एवं अनुभववादी चिन्तन सम्भव नहीं है, उसके विषय में वह केवल व्याख्या कर सकता है। वस्तु का आवश्यक गुण व्याख्यानीय होना नहीं है। व्याख्यानीय होना तत्त्व, आत्मा और ब्रह्म की एक-मात्र, महत्त्वपूर्ण विशेषता व्याख्यानीय होना है। दार्शनिक चिन्तन के लिये वस्तु का व्याख्यानीय होना आवश्यक है। वस्तुओं को जब तक शब्दों में व्यक्त नहीं किया जाता है, तब तक वह बुद्धिगम्य नहीं होता है। विज्ञान में तथ्यों की व्याख्या की जाती है, जो वस्तु का तत्त्व नहीं है। दार्शनिक विचार केवल तत्त्व को व्यक्त करते हैं, और इसीलिए बार्तालाप के योग्य होना उसकी विशेषता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि दार्शनिक विचार वाक्शक्ति का एक रोग है। दार्शनिक तत्त्व स्वतः सिद्ध हैं एवं वैयक्तिक मन से स्वतंत्र रहते हैं।

तथ्य के ज्ञान और तत्त्व, आत्मा तथा परब्रह्म के ज्ञान में भेद है। तथ्य इस प्रकार के निर्णय जैसे, "'अ' 'ब' से इस तरह सम्बन्धित है" के रूप में व्यक्त किये जाते हैं। लेकिन दार्शनिक विचार के निर्णय "'अ' है" की तरह है। जबकि सामन्य निर्णयों में तथ्यों का सम्बन्ध तथ्यों से रहता है, दर्शनशास्त्र के निर्णय, 'अ है', 'मैं हूँ' या 'परब्रह्म है' के रूप में निर्णय रहता है। "'अ' है", 'परब्रह्म है' या 'मैं हूँ' ये निर्णय प्रकाशित करते हैं कि 'अ' 'मैं' या 'परब्रह्म' स्वतःसिद्ध, सत्य एवं यथार्य हैं। इसके द्वारा यह भी बोधित होता है कि आत्मन् स्वतः सिद्ध है। विधेय, उद्देश्य का निगमन नहीं है। उद्देश्य, विधेय का पूर्वानुमान है। आत्मन् स्वतःसिद्ध है। 'अ है', 'मैं हूँ', 'ब्रह्म है' का आत्मा के साथ आवश्यक सम्बन्ध रहता है एवं उसका ध्यान में अनुभव होता है। तत्त्वों के उपयोगिता का सम्बन्ध भी आत्मन् से रहता है।

Scanned by TapScanner

२. आत्मन् सम्बन्धी दर्शन :

आत्मन् का तात्पर्य 'मैं' या स्वतंत्र ज्ञाता से है। 'मैं' सैद्धान्तिक चेतना है। मैं आत्मा का प्रतीक रूप है। 'मैं' बोलने की क्रिया के रूप में समझा जाता है। 'मैं' यथार्थ सत् है क्योंकि धार्मिक या आध्यात्मिक अनुभूति में इसे आत्मन् के रूप में हम अनुभव करते हैं। 'मैं' (आत्मन्) का अनुभव चिन्तन में होता है, 'मैं' का चिन्तन वस्तुपरक है जिसमें आत्मन् का संकेत मिलता है। जब हम कहते हैं कि 'अ है' या 'तत्त्व है', तब उद्देश्य का विधेय के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं। आत्म-चिन्तन में आत्मन् अन्तर्निहित रहता है चिन्तन के साथ आत्मन् का अनिवार्य सम्बन्ध है। लेकिन अनुभव करने वाली चेतना के संदर्भ में ज्ञाता, आत्मन् को स्वयं अपना अनुभव होता है। जब हम कहते है, 'मैं हूँ' तब 'आत्मन्' अपने आत्मानुभूति की अवस्था में है और वस्तु के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उस ज्ञाता का अनुभव वस्तुपरक नहीं रहता है। इस अवस्था में ज्ञाता स्वयं अपने अस्तित्व का अनुभव करता है।

'आत्मा' सम्बन्धी दर्शन आध्यात्मिक या धार्मिक अनुभूति पर आधारित है। ज्ञाता 'मैं' की अनुभूति हमें सामान्य चेतना में कभी नहीं होती है। आध्यात्मिक अन्तर्निरीक्षण में अनुभव की तीन श्रेणियाँ समाविष्ट हैं। आरम्भिक अवस्था में शरीरयुक्त आत्मा की अनुभूति होती है। उच्चतर स्थिति में ज्ञाता 'मैं' का अनुभव शरीर तथा मन से पृथक् रूप में होता है। इस विभेद का अनुभव आध्यात्मिक जागरण के साथ आरम्भ होता है। दूसरी श्रेणी का अनुभव आत्मा का अन्य आत्माओं के साथ सम्बन्ध की चेतना है। तीसरा अनुभव की सर्वोच्च श्रेणी, अति-वैयक्तिक आत्मा की चेतना है। ज्ञाता 'आत्मन्' या 'मैं' को अन्य आत्माओं के साथ समागम की अनुभूति होती है। आत्माओं के साथ आत्मा के तादात्म्य की आध्यात्मिक चेतना उत्कृष्ट ज्ञानात्मक अनुभूति है। 'मैं' (आत्मन्) को अपने शरीरयुक्त अस्तित्व, आत्माओं की अनेकता से अपनी अभिन्नता, और आध्यात्मिक ज्ञान की उच्चतर अवस्थाओं में अति-वैयक्तिक सत्ता के साथ अपनी एकता का अनुभव होता है। आध्यात्मिक ज्ञान की उच्चतर श्रेणियों में आत्मा ब्रह्म के साथ अपनी अभिन्नता का अनुभव करता है। आध्यात्मिक ज्ञान की क्रमिक अवस्थाओं में आत्मा क्रमशः अपने अस्तित्व का निषेध करता है। कृष्णचन्द्र लिखते हैं, "प्रथम अवस्था में ज्ञाता को शरीरयुक्त होने की स्पष्ट चेतना रहती है। यह ज्ञाता की चेतना

Scanned by TapScanner

है। यह ऐसी चेतना है जिसमें पदार्थ चेतना नहीं है। अन्य आत्माओं के साथ व्यक्तिगत् सम्बन्ध की चेतना का अनुभव होता है। अन्त में अति-वैयक्तिक आत्मा की चेतना होती है। अति-वैयक्तिक आत्मा की अनुभूति सिर्फ ज्ञाता 'मैं' के संदर्भ में ही नहीं, अपितु समागम की विशिष्ट अनुभूति, 'मैं' के साथ तादात्म्य का अनुभव है।"[1]

धार्मिक अनुभूतियाँ अद्वितीय होती हैं। अनुभवकर्ता चेतना की श्रेष्ठ स्तर तक पहुँचता है। उसकी अनुभूति उनलोगों की अनुभूति से भिन्न होती है जो उसकी तुलना में उच्च या निम्न स्तरों पर हैं। चूँकि आध्यात्मिक उपलब्धियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, उन रहस्यानुभूतियों पर आधारित दर्शन विभिन्न सिद्धान्तों को प्रतिपादित करता है। "धार्मिक दर्शन की प्रत्येक प्रणाली में आत्मा, तत्त्वमीमांसा एवं तर्कशास्त्र के विशिष्ट सिद्धान्त हैं। सभी दर्शन-शास्त्र क्रमबद्ध प्रतीकवाद हैं, और प्रतीकवाद अनिवार्यतः विकल्पों को प्रति-पादित करता है।"[2]

आत्मा की आध्यात्मिक अन्तर्निरीक्षणात्मक अवस्था ज्ञाता की उपलब्धि का परिचय देती हैं। आध्यात्मिक अनुभूति आत्मा को गहराई में ले जाती हैं तथा उस पर अत्यधिक प्रभाव डालती है। आध्यात्मिक अन्तर्निरीक्षण मनोवैज्ञानिक अन्तर्निरीक्षण से भिन्न है, क्योंकि मनोवैज्ञानिक अन्तर्निरीक्षण ज्ञाता को प्रभावित नहीं करता है। संवेगों, विचारों, संवेदनाओं, इत्यादि, का मनोवैज्ञानिक अन्तर्निरीक्षण ज्ञाता को पूर्णतः अप्रभावित छोड़ देता है। इसका मन के वस्तुपरक चेतना में अधःपतन हो सकता है। आध्यात्मिक अन्तर्निरीक्षण ज्ञाता को प्रभावित करता है और आत्मा को रूपान्तरित कर देता है, किन्तु मनोवैज्ञानिक अन्तर्निरीक्षण का आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

आध्यात्मिक चेतना मात्र सत् की चेतना नहीं है, अपितु वह स्वयं परम सत् है। धार्मिक चेतना अत्यधिक शीघ्रता से विकसित होती है और आत्मा सत्ता के साथ अभिन्न रूप से तादत्म्य हो जाती है। सत् आध्यात्मिक चेतना ही परम सत् है। वह शुद्ध सत् है और उसमें किसी प्रकार

---

१. स्टडीज इन दि...

Scanned by TapScanner

की अनेकता नहीं है। किन्तु निम्नतर स्तर पर आध्यात्मिक अनुभूतियाँ विभिन्न प्रकार की होती है। यही कारण है कि तर्कशास्त्र तथा तत्त्वमीमांसा भिन्न-भिन्न हैं। कृष्णचन्द्र लिखते हैं, "प्रत्येक धर्म दर्शन में का आत्मा, तत्त्वमीमांसा और तर्कशास्त्र से सम्बन्धित सिद्धान्त पृथक-पृथक होते हैं। तार्किक सिद्धान्त की मौलिक भिन्नताएँ तत्त्वमीमांसीय हैं, तत्त्वमीमांसा में मौलिक भिन्नताएँ निर्विवाद रूप से आध्यात्मिक हैं, और चिरन्तन आत्मा के सिद्धान्त में मौलिक भिन्नताएँ अव्यक्त रूप से धार्मिक हैं।"[1] "धर्मों को अनिश्चित रूप से अनेकों में विकसित कर सकते हैं और उनको अनेकों प्रकार से समन्वित कर सकते हैं। सामान्यतः दर्शनशास्त्रीय सिद्धान्तों में भिन्नताओं तथा संश्लेषण के लिए काफ़ी विकल्प हैं। दर्शन-शास्त्र का कोई सर्वसम्मति में स्वीकृत समाधान सम्भव नहीं है।"[1] कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य के अनुसार दर्शनों को किसी एक में सूत्रबद्ध या समन्वय करना संभव नहीं है।

३ सत् सम्बन्धी दर्शन :

हम सभी में 'मैं नहीं हूँ', की चेतना रहती है क्योंकि हम विश्वास करते हैं कि 'ब्रह्म है'। 'ब्रह्म' परम सत् है यद्यपि हम उसे निषेधात्मक रूप से जानते हैं। हमारी पूर्व-अवधारणा है कि ज्ञाता 'मैं' का अस्तित्व नहीं है। ब्रह्म का भावात्मक स्वरूप है, जो आत्मा के निषेध के द्वारा व्यक्त होता है। ब्रह्म की शब्दशः व्याख्या सम्भव नहीं है क्योंकि उसे हम भावात्मक रूप में अनुभव नहीं करते हैं। आत्मन् या 'मैं' का निषेध 'ब्रह्म' के अस्तित्व का द्योतक है। निषेधात्मक रूप से ब्रह्म, परम सत् (Truth) है।

ब्रह्म 'सत्' है किन्तु उसे 'सत्' के बराबर नहीं माना जा सकता है। ब्रह्म सत् से श्रेष्ठ है। ब्रह्म 'सत्' है, यह अद्वैत वेदान्त का मत है। वह स्वतंत्र तत्त्व है। ब्रह्म वह है जो सत् नहीं है, जैसा कि बौद्ध धर्म में पाते हैं, अर्थात् 'तत्त्व' है। और वह 'सत्' और 'तत्त्व' की अनिर्णित तथ्य अर्थात् 'मूल्य' भी है।

चूँकि ब्रह्म का सिर्फ़ निषेधात्मक रूप से हम विश्वास करते है, इसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता है। यह सिर्फ़ प्रतीकों के माध्यम से

---

१. गोपीनाथ भट्टाचार्य, अनैलिसिस टू स्टडिज़ इन फ़िलासाफ़ी, भाग २, पृष्ठ-११५.

Scanned by TapScanner

व्यक्त किया जा सकता है। कृष्णचन्द्र कहते हैं, "'सत्' की चेतना वह है जिसमें विश्वास किया जाता है, लेकिन जिसे वस्तुपरक या आत्मपरक अभिवृत्ति के द्वारा समझा नहीं जाता है, वे शब्दों में कथनीय नहीं है, किन्तु जो अतिधार्मिक या विश्वातीत चेतना है वे प्रतीकात्मक ढंग से कथनीय हैं।"[1]

तत्त्व (Reality) और 'सत्' (Truth) में भेद है। 'सत्' वह है जिसका अनुभव व्यक्ति को रहस्यानुभूति में होता है। यह अनुभूति, आत्मा के अस्तित्व का निषेध नहीं करती है। आत्मा, जो 'सत्' का अनुभव करती है वह 'मैं' है। आत्मा, 'सत्' के साथ अभिन्न हो जाती है या 'सत्' से तादाम्य हो जाती है किन्तु ऐसी अनुभूति में 'मैं' का कोई निषेध नहीं होता है। यह अनुभव असीमता, सार्वभौमिकता तथा आनन्द का अनुभव है। "आध्यात्मिक चेतना सिर्फ़ सत् की चेतना नहीं है, अपितु स्वयं 'सत्' है।"[2] धार्मिक अनुभूति में 'मैं' का निषेध नहीं होता है। 'सत्' (Truth) का अनुभव रहस्यानुभूति में होता है, 'तत्त्व' (Reality) का अनुभव नहीं होता है। तत्त्व (Reality) में 'मैं' का निषेध अन्तर्निहित है। 'सत्' (Truth) का भावात्मक स्वरूप अवर्णनीय है। 'सत्', 'ब्रह्म' के वाचनीय स्वरूप से स्वतंत्र है। 'सत्' ब्रह्म है। यह अकथनीय और अवर्णनीय है। 'सत्' का वर्णन सिर्फ़ 'है' के रूप में किया जा सकता है। इसके भावात्मक स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता है। किन्तु तत्त्व (Reality) के रूप में ब्रह्म का अनुभव रहस्यानुभूति में उपलब्ध होता है, जो कथनीय है। कथनीय रूप में ब्रह्म 'सत्' (Truth) है, असत् के रूप में वह 'तत्त्व' है, और उनकी अनिश्चितता में वह 'मूल्य' है।

Scanned by TapScanner